

## उत्तराखण्ड के लोक-नृत्यों की थिरकन

डॉ० नारायण दत्त पालीवाल

प्रकृति के सानिध्य में पल रहा कुमाऊँ और गढ़वाल का लोकजीवन संघर्ष और अभावों के बीच भी सुख के दो चाय-पल जुटाने में सफल हो जाता है और तब उसके पग थिरकने लगते हैं, मयूर नाच उठता है और लोकमानस आनन्द की अनुभूति के गहन सागर में हिलोरे लेने लगता है। रमणीक हिमालय के आंगन की प्राकृतिक सुषमा हरे-भरे घने जंगलों की सुन्दरता, भांति-भांति के फूलों की बासंती सुवास वहां के वातावरण को महकाते हैं, आकर्षक बनाते हैं। गीतों के मधुर बोल ऊँचे शिखरों, गहरी घाटियों और वन-प्रांतर एवं उपत्यकाओं में गूंजते हुए कानों में रस घोलते हैं। तभी तो कहा गया है कि लोकगीत सभी जगहों के मधुर होते हैं पर हिमालय-क्षेत्र के गीतों की अपनी अलग ही मिठास होती है। ये गीत जीवन की नीरसता में भी सरसता का संचार करते हैं, पत्थरों में भी धड़कन उत्पन्न करने की क्षमता रखते हैं और इनसे पाषाण हृदय भी पिघल जाता है रेगिस्तान जैसी धरती में भी फूल खिलने लगते हैं। गीतों की इस गंगा में जो डुबकी लगा लेता है वही निहाल हो जाता है। इस उमंग और उल्लास के संसार में हृदय की कोमलतम भावनाएं, जब तरंगित होती हैं तो मानव झूम उठता है, पग थिरक उठते हैं तन-मन पुलकित हो जाता है और गीतों के इस मधुर संसार में भांति भांति के नृत्य जुड़ जाते हैं। ये नृत्य वहां के जीवन में एक प्रकार के अलौकिक वातावरण का सृजन करते हैं। इनका जादू अदभूत होता है। जब इनके साथ लोकजीवन स्वर और ताल मिलाता है तो लगता है कि प्रकृति के साज-शृंगार ओर मानव की भाव-तरंगों में सुंदर सामंजस्य से जीवन की सारी उमंगें झूम उठी हैं, गाने लगी हैं और आकार रूप में नृत्य करने लगी हैं, यहां प्रमुख नृत्यों की जानकारी दी जा रही है।

गढ़वाल में कहीं चौफुला की छटा है तो कहीं थड्या, झुमैलो और बाजूबंद की। "छम घुघरुं बाजिजा पौड़ि की उकालि में" के स्वर जब गूंजते हैं-तो गढ़वाल झूम उठता है।

धौंस्यल नृत्य - भोला बचपन जब गीतों के संसार में कल्पना के पंख लगाकर उड़ने लगता है तो नन्हें पग स्वतः ही थिरकने लगते हैं। बालिकाएं गोल घेरे में एक दूसरे के हाथ कंधों से जोड़कर नृत्य करते हुए हिमालय के सौंदर्य के गीत गाने लगती हैं-

खेल दरि, दरि को दरि  
दरि ये हिंवाले दरि  
मनुवों क माण दरि,  
मरी जाण दुनियें ले,  
के जस लिजाण दरि। खेल दरि....।

नन्हीं सी बालिकाओं के बाल मन में हिमालय के सौन्दर्य और संसार की असारता के आध्यत्मिक ताने-बाने को गीतों और नृत्य में बांधकर समां बांध दिया है। फिर जीवन के तथ्य को भी नृत्य-गीत में पिरो दिया जाता है-

ओ बुड़ा, धौंस्यल  
बुड़ छै बुड़ा, धौंस्यल,  
से बुड़ा का धुन घिंडवा  
में ते बुड़ाक घर नि आनों,  
ओ बुड़ा धौंस्यल।

जीवन का यथार्थ गीतों ओर नृत्य के माध्यम से साकार हो रहा है। गोल घेरे में घूमती, नाचती, थिरकती बालिकाओं की सुरीली धुन सभी का मन मोह लेती है। झोड़ा नृत्य-यह सामूहिक नृत्य है। जिसके साथ गीत गाए जाते हैं। उनका संबंध जीवन से होता है, जगत से होता है। ये भक्ति गीत होते हैं, प्रणय-गीत होते हैं, ऐतिहासिक प्रसंगों को वाणी मिलती है। जीवन के अभावों, संघर्षों गरीबी और दैन्य को अभिव्यक्ति मिलती है। एक गोल घेरे में कभी केवल पुरुष, कभी केवल महिलाएं और कभी पुरुष और महिलाएं झोड़ा गाते हुए नृत्य करती हैं। गीत के सुरीले बोल, नृत्य के आकर्षक हाव भाव, प्रसन्न मुद्रा झोड़ों के झमाकों का हश्य देखते ही बनता है।

बली गोरी गंगा भागरथी को के भलो रेवाड़  
खोलि दे भाता खोल भवानी धरम केवाड़

के ल्यै रछे भेंट पखव के खोलूं केवाड़  
हांजरी के फूल ल्यैरु खोलि दे केवाड़।

कभी गंगा की महिमा तो कभी बद्री-केदार की धरती के  
बोल, हरिद्वार और कुंभ के स्नान की महत्ता

बाबा जी बद्री-केदारा हरी द्वारिका,  
बाबा जी कुंभा को मेलो हरी द्वारिका,  
बाबा जी हरी की हृदिद्वारा हरी द्वारिका,  
बाबा जी हमलै नै आँला हरी द्वारिका।

इस नृत्य में कभी कभी हुड़का बादक बीच-बीच में हुड़के  
की थाप पर गीत की मुख्य कड़ी नृत्य की मुद्रा के साथ  
गाता है और गोल घेरे में नृत्य करते झोड़ा गायक उसे  
दोहराते हैं। छपेली नृत्य-यह नृत्य दो व्यक्तियों द्वारा  
किया जाता है। एक पुरुष, एक महिला। एक हाथ में  
रुमाल, एक हाथ में छोटा सा आईना (ऐन)। गीत की  
पंक्तियाँ जोड़ के रूप में गाई जाती हैं। उसके साथ लोक  
प्रचलित की कड़ी जोड़कर नृत्य किया जाता है। नृत्य  
करते समय गायिका के घाघरे में शोभित आकर्षक पट्टी  
(चैन) तथा लहराते हुए घाघरे का स्वरूप मोर के नृत्य से  
मेल खाता है-

एक हाथ रुमाव छ एक हाथ ऐन,  
नौ पाटै घागरि पार रेशमियाँ चैन

यह नृत्य मेलों में, विशेष अवसरों पर बारातों या अन्य  
आयोजनों पर किया जाता है। कभी-कभी कोई पुरुष,  
महिला क कपड़ों में यह नृत्य करता है जो स्वांग परम्परा  
का घातक है।

जोड़ नृत्य-गीत-मेलों के अवसर पर जोड़ गीत गाते  
हुए टोली बनाकर बीच में कभी एक व्यक्ति और कभी दो  
घार व्यक्ति नृत्य कर सभी बांधते हैं। इनमें कभी हुड़का,  
मुरुली, कभी खड़ताल कभी अलगोजा और कभी गीतों में  
मगन लोगों की तालियां संगत करती हैं।

ऋतुरैण नृत्य गीत-चैत के महीने में घर-घर जाकर औजी  
(विशिष्ट वादक) औज्यांणी (औजी की पत्नी अथवा उसी  
जाति की नर्तकी ऋतु-गीत गाते हुए विशेष मुद्रा में नृत्य  
करती है और उसके बोल होते हैं

ऋतु वे रणमणी बौज्यू ऋतु वे रणमणी,  
ऋतु मास लोटी आनी, मनखा नि आना,

ऋतु, ऋतु वे रणमणी बौज्यू.....।

यों दिन यों मास ऋतु भेटनें रै जया,

ऋतु, ऋतु वे रणमणि।

ये गीत इतने करुण होते हैं कि गाने और सुनने वालों  
सभी की आंखों में आंसू आ जाते हैं आशय है ऋतु तो  
लौट आती हैं पर अपने जो संसार छोड़ जाते हैं वे कभी  
लौटकर नहीं आते। औजी ढोलक पर थाप देता है, गाता  
है और औज्याणी बोल दोहराती है और नृत्य करती है।  
संस्कार नृत्य-एक हाथ में ढाल, एक में तलवार लिए,  
सफेद चूड़ीदार पाजामे, मिर्जई तथा सफेद पाग या  
सफेद दो कली टोपी में दो संस्कार-नर्तक प्रायः बारातो  
की शोभा बढ़ाते हैं। ये सामंती युग की शाही बारातों  
अथवा युद्ध कौशल और रण भूमि की ओर बढ़ने वालों की  
याद दिलाते हैं। तलवार से प्रहार, ढाल से बचाव और  
पदचाप तथा अंग संचालन का निराला अंदाज होता है।  
ढोल, इमामा, हुड़का, बीन बाजा तथा रण सिंघ संगत  
करते हैं। यह बारात के चलते-चलते भी होता है और  
महफिल में भी। प्राचीन संस्कृति का द्योतक यह नृत्य  
पर्याप्त लोक प्रिय और हमारी विरासत का अंग है। होली  
नृत्य-सांस्कृति नृत्यों में पहाड़ी होली गाने तथा उसके  
साथ आकर्षक हाव-भाव तथा मुद्रा और पद-चाप के साथ  
नृत्य करने का अनूठा अंदाज है। एक हाथ में रंगीन  
रुमाल लिए दोनों हाथ उठाकर घूमते-झूमते हुए गंद-मंथर  
गति से चलने वाले इस नृत्य में होली के उल्लास और  
मादक वातावरण की गहराई होती है। वाद्य यंत्रों की  
संगत इसे और भी मधुर बना देती है।

जागर नृत्य-धार्मिक उत्सवों पर लोक शैली में विभिन्न  
देवी-देवताओं की गाथा को मूर्त रूप देते हुए जागर गीत  
के साथ व्यक्ति विशेष द्वारा यह नृत्य सांस्कृतिक महिमा  
से मंडित होता है। गढ़वाल में भी पाण्डव-नृत्य ऐसी ही  
गरिमा से मंडित है। हुड़का और थाली बजाकर जागर  
नृत्य में देवताओं की 'चाल' (गति एवं पदचाप) का  
आकर्षण होता है।

इनके अतिरिक्त घस्यारी नृत्य, हुड़का नृत्य, पूजा  
नृत्य, हुड़क्यांणी नृत्य, जातरा नृत्य आदि नाम भी  
लोक-संस्कृति से जुड़े हुए नृत्यों को दिए जा सकते हैं।  
वसंत आता है, प्रकृति का श्रृंगार होता है। फसल तैयार  
होती है किसान झूम उठता है। मांगलिक उत्सव होते हैं

मन में उमंग और उत्साह छा जाते हैं। पर्व, मेले, त्यौहार आते हैं तो अपने साथ परम्परा, लोकगीतों में इसी को शब्द मिलते हैं। इन शब्दों की मिटास में मन नाचने लगता है। धरती गाने लगती है। पुलकित मानव का मन थिरक उठता है। कण-कण में रंग और तरंग के दर्शन होते हैं। यही तो है हमारे गीतों की भाव भूमि, हमारे लोक-नृत्यों की आधारशिला। यह हमारी संस्कृति की जीवंत विरासत है जिसमें हमारी मिट्टी की महक और हमारी भावनाओं की सुवास समाहित है। परंतु आज हम इसके सहज-स्वाभाविक रूप को भूलते जा रहे हैं। तथाकथित आधुनिकता की अंधी दौड़ में हमारे लोक-गीतों और लोक नृत्यों का स्वरूप बिगड़ रहा है। मंचों पर इनकी प्रस्तुति फिल्मी सहजता नष्ट हो रही है। पश्चिमी प्रभाव, उपभोक्तावादी संस्कृति इनमें भाषा का भावना का और

विकृत स्वरूप का प्रदूषण फैला रही है। आज इन लोक कलाओं के साथ पैसा जुड़ गया है, पूरी तरह से व्यावसायिकता जुड़ गई है और इनकी सांस्कृतिक परिभाषा नष्ट हो रही है। जड़े कट रही हैं। अपनी धरती की सहज महक की जगह अपसंस्कृति की छाया पड़ रही है। इससे हिमालयी संस्कृति आहत हो रही है। उसकी अस्मिता के सामने संकट है। हमें अपनी इस पहचान के प्रति जागरूक रहना होगा। भौगोलिक प्रदूषण की ही भांति पहाड़ों में फैल रहे वैचारिक और सांस्कृतिक प्रदूषण से अपनी लोक संस्कृति और लोक-कलाओं को बचाने तथा उनका संरक्षण करने की दिशा में जागरूक रहना होगा। यही सच्चे कलाकारों, कला-प्रेमियों और पर्वतीय-संस्कृति के प्रहरियों का नैतिक कर्तव्य भी है। क्या हम अपनी सोच को नई दिशा दे सकेंगे।